ज्ञानविविधा
कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की सहकर्मी-समीक्षित, मूल्यांकित, त्रैमासिक शोध पत्रिका

ISSN : 3048-4537(Online)
3049-2327(Print)
IIFS Impact Factor-2.25
Vol.-2; Issue-4 (Oct.-Dec.) 2025
Page No.-200-204
©2025 Gyanvividha
https://journal.gyanvividha.com

Author's :
डॉ. आचार्य अविनाश चन्द्र शुक्ल
प्राचार्य, श्री पंचायती संस्कृत
स्नातकोत्तर महा. मुण्डेरवा, बस्ती.

Corresponding Author :
डॉ. आचार्य अविनाश चन्द्र शुक्ल
प्राचार्य, श्री पंचायती संस्कृत
स्नातकोत्तर महा. मुण्डेरवा, बस्ती.

श्रीमद्भागवत महापुराण में सामाजिक एवं सांस्कृतिक समीक्षा

श्रीमद्भागवत महापुराण में सामाजिक एवं सांस्कृतिक समीक्षा का भिन्न-भिन्न स्थलों पर वर्णन मिलता है। श्रीमद्भागवत महाकाव्य एक ऐसा ग्रन्थ है जो कि श्रीकृष्ण के अवतार की चर्चा तो प्रमुख रुप से करता है, किन्तु इसके अतिरिक्त यह ग्रन्थ राजाओं, राजवंशों की परम्परा का विवरण देकर सामाजिक सन्दर्भों का भी संकेत करता है। उस काल में समाज की क्या स्थिति थी, किस प्रकार के लोग, किस रुप में अपना जीवन व्यतीत करते थे और वे किस-किस नाम से पुकारे जाते थे इस सन्दर्भ में सामाजिक स्वरुप का विवरण भी श्रीमद्भागवत महापुराण में यत्र-तत्र देखा जा सकता है और जिसका समीक्षण कर तत्कालीन समाज का स्वरुप समझा जा सकता है।

श्रीमद्भागवत महापुराण में अनेक जातियां का भी संकेत मितला है। जैसे भोज वंश का संकेत अधिक रूप में है। यह वंश वह था जिसमें कंस पैदा हुआ था और जिसे यदुवंश भी कहा जाता था। यह पाण्डवों के साथ सम्बन्धित था। भोज वंश में कंस कुलविघ्वन्सक था। सूरवीर भी था। एक अन्य स्थान पर राजवंश का वर्णन करते हुए यह कहा गया है कि महाभोज का राजा धर्मात्मा था और इसी वंश में भोज उत्पन्न हुए एवं दूसरे स्थल पर यह वर्णित है कि भोज, कृष्ण, अन्धक, शूरसेन आदि ऐसे हैं जो सदा श्लाघनीय रहेंगे।

(1) वर्ण-व्यवस्था : भागवत महापुराण में सामाजिक एवं सांस्कृतिक समीक्षा के अन्तर्गत वर्ण व्यवस्था सृष्टि के आरम्भ में समस्त मनुष्यों का केवल एक ही वर्ण था- हंसवर्ण। बाद में ये स्वभाव परिवर्तन के कारण चातुर्यवर्ण का जन्म हुआ। मनु वंश में उत्पन्न धृष्ट पुत्र क्षत्रिय से ब्राह्मण तथा नाभाग से क्षत्रिय वैश्य वर्ण का उदय हो गया था।

भागवत महापुराण में वर्ण-व्यवस्था का प्रतीकात्मक वर्णन किया गया है। सबसे पहले वेद ही वांग्मय, ओंकार ही एक नारायण जप विज्ञान का एक ही मुख्य अंग, अग्नि और एक ही वर्ण था। किसी भी धर्म में जाति का उल्लेख नहीं आया है। कर्म से वर्ण व्यवस्था को जिस वर्ण के

जो लक्षणा बताए गये हैं। उसमें वही लक्षण घटित होने चाहिए। एक ही कुल (परिवार) में चारों वर्ण व्यवस्था का आदर्शरूप बताया गया है। इसमें यह भी कहा गया है कि एक व्यक्ति कारीगर है, दूसरा सदस्य चिकित्सक है, तीसरा चक्की चलाता है। इस तरह एक ही परिवार में सभी वर्णों के कर्म करने वाले हो सकते हैं। इस आधार पर कैसे उसी परिवार में जन्म लेने वाले सभी लोगों को एक ही वर्ण या जाति कहा जा सकता है।

वर्तेत ब्रह्माणा विप्रो राजन्यो रक्षया भुवः।
वैश्यस्तु वार्तया जीवेच्छद्रस्तु द्विजसेवया।।

जो जिस योग्यता का हो उसे उसी वर्ण का माना जाना चाहिए। जैसे कोई यदि चिकित्सक है तो वह ब्राह्मण है और दूसरा सदस्य पुलिस में है तो वह क्षत्रिय है। इसी तरह दूसरे व्यक्तियों के बारे में भी उसके कर्म तथा गुण के अनुसार उन्हें मान्यता देनी चाहिए। यही धर्म शास्त्रों की वर्ण-व्यवस्था है। तथा यही एक आदर्श समाज का मापदण्ड भी होना चाहिए।

श्लाघनीयगुणः शूरैर्भवान् भोजयशस्करः।
स कथं भगिनीं हन्यात् स्त्रियमुद्वाहपर्वणिः।।

भोज वंश के होनकार राजकुमारों आप वंशधर तथा अपने कुल की कीर्ति बढ़ाने वाले हैं। बड़े-बड़े शूरवीर आपके गुणों की सराहना करते हैं। इधर यह एक तो स्त्री, दूसरे आपकी बहिन और तीसरे यह विवाह का शुभ अवसर। ऐसी स्थिति में आप इसे कैसे मार सकते हैं ? वीर-वर तो जन्म लेते हैं, उनके शरीर के साथ ही मृत्यु भी उत्पन्न होती है। आज तो या सौ वर्ष के बाद-जो प्राणी है, उसकी मृत्यु होगी ही।

चारों वर्णों का वर्णन- सामाजिक कार्यों का सुचारु ढंग से सम्पादन समाज व व्यक्ति के अस्तित्व के लिए परमावश्यक है। वर्ण-व्यवस्था से इसी आवश्यकता की पूर्ति होती है। वर्ण-धर्म के आधार पर समाज के सभी व्यक्ति पारस्परिक अधिकार तथा कर्तव्य के एक सुदृढ़ सूत्र में एक दूसरे से सम्बद्ध हो जाते हैं।

भागवत में चारों वर्णों के सदस्यों का स्वभाव इस प्रकार वर्णित है-

1. ब्राह्मण : चारो वर्णों में पहला स्थान ब्राह्मण का है जिसका जन्म 'भगवान् के मुख' से हुआ है। ब्राह्मण के स्वभाव के बारे में भगवान् ने कहा है-

शमो दमस्तपः शौचं सन्तोषः क्षान्तिरार्जवम् ।
मद्भक्तिश्च दया सत्यं ब्रह्मप्रकृतयस्त्विमाः।।

अर्थात् शम, दम, तपस्या, पवित्रता, सन्तोष, क्षमाशीलता, सीधापन, मेरी भक्ति दया और सत्य ये ब्राह्मण वर्ण के स्वभाव हैं।

2. क्षत्रिय : क्षत्रिय वर्ण का स्थान दूसरा है जिसका जन्म भगवान् के बाहु से (भुजा) हुआ है। क्षत्रिय के स्वभाव के बारे में भगवान् ने भागवत में कहा है-

तेजो बलं धृतिः शौर्यं तितिक्षौदार्यमुद्यमः।
स्थैर्य ब्रह्मण्यतैश्वर्य क्षत्रप्रकृतयस्त्विमाः।।

तेज, बल, धैर्य, वीरता, सहनशीलता, उदारता, उद्योगशीलता, स्थिरता, ब्राह्मणभक्ति और ऐश्वर्य ये क्षत्रिय वर्ण के स्वभाव हैं।

3. वैश्य : वैश्य वर्ण का तीसरा स्थान है। वैश्य वर्णका जन्म भगवान् के जंघा से हुआ है-

आस्तिक्यं दाननिष्ठा च अदम्भो ब्रह्मसेवनम्।
अतुष्टिरर्थोपचयैवैश्यप्रकृतयस्त्विमाः।।

आस्तिकता, दानशीलता, दम्भहीनता, ब्राह्मणों की सेवा करना और धनस´चय से सन्तुष्ट न होना ये वैश्य वर्ण के स्वभाव हैं।

4. शूद्र : शूद्र वर्ण का चौथा स्थान है। जिसका जन्म भगवान् का चरण माना जाता है। शूद्र वर्ण का स्वभाव इस प्रकार है-

शुश्रूषणं द्विजगवा देवानां चाप्यमायया।
तत्र लब्धेन सन्तोषः शूद्रप्रकृतयस्त्विमाः।।

ब्राह्मण, गौ और देवताओं की निष्कपट भाव से सेवा करना और उसी से जो कुछ मिल जाय, उसमें सन्तुष्ट रहना- ये शूद्र वर्ण के स्वभाव हैं।

इन चारों वर्णों में जो एक का अधिकार है, वही दूसरे का कर्त्तव्य है, और बिना अपने कर्त्तव्यों का पालन किये कोई भी व्यक्ति अपने अधिकारों का उपभोग नहीं कर सकता है।

सांस्कृतिक समीक्षा : श्रीमद्भागवत महापुराण को भारतीय संस्कृति की व्याख्या करने वाला एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ माना गया है यह वैष्णववाद का एक केन्द्रीय ग्रन्थ है इसमें नारायण और उनके अवतारों की गाथाओं का वर्णन प्राप्त होता है। यह ग्रन्थ अद्वैतवाद के आध्यात्मिक दृष्टिकोण और भक्ति की साधना दृष्टि को दर्शाता है। यह ग्रन्थ वाल्मीकीय रामायण और महाभारत के साथ संस्कृति की उपजीव्य काव्यत्रयी में शामिल है। इस ग्रन्थ से प्रेरित होकर ब्रजभाषा के अष्टछापी, निम्बार्की राधावल्लभीय जैसे कवियों में राधा कृष्ण की लीलाओं का गायन किया।

श्रीमद्भागवत कथा भारतीय संस्कृति की वृहद् व्याख्या है। भगवान् के भक्त मृत्यु के मस्तक पर पैर रखकर भगवान् के धाम की यात्रा करते हैं। इसीलिए भक्त ध्रुव सीधे भगवान् के धाम में गये। मनुष्य ही उत्तानपाद हैं, जीव की दो वृत्तियाँ ही उसकी दो पत्नियाँ सुरुचि व सुनीति है। सुरुचि के अनुसार पुत्र उत्तम तो होता है, लेकिन माता-पिता का कल्याण करेगा इसमें संदेह है, जबकि सुनीति के अनुसार यदि जीवन जिया जाए तो बालक ध्रुव की तरह निश्चय ही कल्याणकारी होता है।

पुराणों की सर्वोपरि महत्ता आस्तिकवाद के समर्थन के कारण है। उसमें अनेक देवताओं का वर्णन है सभी देवताओं की समानता की घोषणा करने पर भी एक देवता की महत्ता दिखाना सभी पुराणों का लक्ष्य रहा है। विशेष रूप से ब्रह्म, विष्णु, शिव, गणेश तथा सूर्य की उपासना अनेक पद्धतियों का प्रमाणिक बोध पुराणों से होता है।

श्रीमद्भागवत महापुराण हिन्दू समाज का सर्वाधिक आदरणीय पुराण रहा है। यह वैष्णव सम्प्रदाय का प्रमुख ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में वेदों, उपनिषदों तथा दार्शनिक शास्त्र के गूढ़ रहस्यमय विषयों को अत्यन्त सरलता के साथ निरुपित किया गया है। इसे भारतीय धर्म तथा संस्कृति का विश्वकोष कहना अधिक समीचीन होगा।

श्रीमद्भागवत में (12) बारह स्कन्ध है तथा अट्ठारह (18) हजार श्लोक है। भारतीय पुराण साहित्य में श्रीमद्भागवत को समस्त श्रुतियों का सार, महाभारत का तात्पर्य निर्णायक तथा बह्मसूत्रों का भाष्य कहा जाता है। इसमें सृष्टि की रचना से लेकर कलयुग यानि सृष्टि के विनाश तक की कहानी समाहित हैं। इसमें भगवान् के अवतारों की कथाओं के माध्यम से जीवन में कर्म और अन्य शिक्षाओं को समाहित किया गया है। श्री वेदव्यास जी के पुत्र शुकदेव जी को इस कथा का श्रेष्ठ कथाकार माना गया है। वे इस कथा का सम्पूर्ण मर्म जानते थे।

(1) शिक्षा एवं गुरुकुल : श्रीमद्भागवत महापुराण के अनुसार शिक्षा एवं गुरुकुल पृथ्वी से लेकर कबूतर तक आठ गुरुओं की कथा एवं अजगर से लेकर पिंगला तक नौ गुरुओं की कथा कुरर से लेकर भृंगी तक सात गुरुओं की कथा एवं श्रीकृष्ण बलराम जी के गुरुकुल प्रवेश की कथा का वर्णन निम्न प्रकार से है-

अवधूतोपाख्यान- पृथ्वी से लेकर कबूतर तक आठ गुरुओं की कथा-

यदात्थं मां महाभाग तच्चिकीर्षितमेव मे।
ब्रह्मा भवो लोकपालाः स्वर्वासं मेऽभिकांक्षिणः।।
मया निष्पादितं ह्यत्र देवकार्यमशेषतः।
यदर्थमवतीर्णोऽहमंशेन ब्रह्मणार्थितः।।

भगवान् श्रीकृष्ण जी कहते हैं महा भग्यवान उद्धव! तुमने मुझसे जो कुछ कहा है, मैं वही करना चाहता हूँ। ब्रह्मा, शंकर और इन्द्रादि लोकपाल भी अब यही चाहते हैं कि मैं उनके लोकों में होकर अपने धाम को चला जाऊँ। पृथ्वी पर देवताओं का जितना काम करना था उसे मैं पूरा कर चुका। इसी काम के लिए ब्रह्मा जी की प्रार्थना से मैं बलराम जी के साथ अवतीर्ण हुआ था।

भारतीय वांग्मय के प्राचीनतम ग्रन्थ वेदों के अनन्तर यदि श्रीमद्भागवत को विश्वकोष की संज्ञा दी जाए तो यह अतिशयोक्ति नहीं है क्योंकि वेद समझने में कठिन है, अतः प्राचीन सभ्यता संस्कृति के अध्ययन और जीवन को सुख पूर्ण बनाने के लिए भागवत प्रशस्त मार्ग ही सर्वोत्तम मार्ग है।

श्रीमद्भागवत महापुराण के अनुसार शिक्षा का अर्थ- नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।

अवधूतोपाख्यान-अजगर से लेकर पिंगला तक नौं गुरुओं की कथा-

शयीताहानि भूरीणि निराहारोऽनुपक्रमः।
यदि नोपनमेद् ग्रासो महाहिरव दिष्टभुक्।।
ओजः सहोबलयुतं बिभद् देहमकर्मकम्।
शयानो वीतानिद्रश्च नेहेतेन्द्रियवानपि।।

अवधूत दत्तात्रेय जी कहते हैं- कि हे राजन उसके शरीर में मनोबल, इन्द्रिय तथा देहबल तीनों हो तब भी वह निश्चेष्ट ही रहे। निद्रा रहित होने पर भी वह सोया हुआ सा रहे तथा कर्मेन्द्रियों के होने पर भी उससे कोई चेष्टा न करें। राजन ! मैंने अजगर से ही शिक्षा ग्रहण की है। समुद्र से मैंने यह सीखा है कि साधक को सर्वदा प्रसन्न और गम्भीर रहना चाहिए उसका भाव अथाह, अपार तथा असीम होना चाहिए और किसी भी निमित्त से उसे क्षोभ न होना चाहिए। जैसे ज्वारभाटे और तरंगों से रहित शान्त समुद्र।

ज्ञान, शिक्षा एवं विद्या का पर्याय शब्द है। तथापि इनमें सूक्ष्म वेद ही हैं। किसी भी देश या समाज की सांस्कृतिक, बौद्धिक व वैज्ञानिक प्रगति उस देश की शिक्षा पर निर्भर करती है। समाज के विकास के लिए शिक्षा का विकास होना चाहिए। शिक्षा के शाब्दिक अर्थ में सीखना-सिखाना भी सम्मिलित है, किन्तु वास्तविक अर्थ में शिक्षा का अभिप्राय अन्तर्दृष्टि का विकास है।

"तमसो मा ज्योतिर्गमय" शिक्षा अन्धकार से प्रकाश की ओर ले जाती है। शास्त्रों के अध्ययन के बाद भी यदि व्यक्ति शिक्षा का सम्यक् सद्उपयोग न करे तो वह मूर्ख ही कहा जायेगा। शिक्षा संस्कार निर्मात्री है। शिक्षा से जो विकसित होती है। शिक्षित व्यक्ति राष्ट्रसेवा, पठन-पाठन आजीविका, पोषण, विकास तथा उन्नति का मार्ग प्रशस्त करता है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि समाज की प्रगति का मूल कारक शिक्षा ही है।

श्रीमद्भागवत महापुराण के अनुसार शिक्षा का परम लक्ष्य व्यक्तित्व का निर्माण है। व्यक्ति का सर्वतोमुखी विकास हो। वह स्व, परिवार, समाज राष्ट्र एवं विश्व के कल्याण के लिए सदमार्ग का अनुसरण करें। उसका नैतिक व चारित्रिक विकास उच्च कोटि का हो। शिक्षा ज्ञानप्रदायिनी है, किन्तु इसे चरित्र निर्मात्री कहा जाये तो अधिक प्रासंगिक है। किन्तु इसे सामाजिक एवं नागरिक कर्त्तव्यों के ज्ञान एवं व्यवहार के विकास का दायित्व शिक्षा का एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है। व्यक्ति एक ही होता है, किन्तु वह पिता, पुत्र, गुरु, शिष्य, सेवक, स्वामी, भाई, पति, पड़ोसी, नागरिक, यात्री उद्यमी व भोक्ता भी है। इन सभी रुपों में उसका क्या दायित्व है तथा कैसे इन भूमिकाओं का निर्वाहन करना चाहिए, यही प्रशिक्षण शिक्षा से प्राप्त होता है। वर्तमान काल में उपार जन, अतिथि सेवा, परिवार का सम्यक् भरण-पोषण, मर्यादा पूर्वक जीवन जीने की कला सिखाना शिक्षा का तात्कालिक उद्देश्य है। बौद्धिक, शारीरिक, सामाजिक, सांवेगिक, समायोजन शक्ति संस्कृति, संरक्षण आदि शिक्षा के चिर उद्देश्य है जिसका वर्णन श्रीमद्भागवत में उपलब्ध है।

श्रीमद्भागवत महापुराण के अनुसार महर्षि सान्दीपनि, बृहस्पति, शुक्राचार्य आदि गुरुओं के वर्णन से भागवत में शिक्षक के स्वरुप का प्रकटीकरण होता है।

अवधूतोपाख्यान-कुरर से लेकर भृंगी तक सात गुरुओं की कथा-

परिगृहो हि दुःखाय यद् यत्प्रियतमं नृणाम्।
अनन्तं सुखमान्पोति तद् विद्वान यस्त्वकिंचनः।।
सामिषं कुररं जघ्नुर्वलिनो ये निरामिषाः।
तदामिषं परित्यज्य स सुखं समविन्दत।।

अवधूत दत्तात्रेय जी ने कहा- हे राजन्! मनुष्यों को जो वस्तुएं अत्यन्त प्रिय लगती हैं, उन्हें इकट्ठा करना ही उनके दुःख का कारण है। जो बुद्धिमान पुरुष यह बात समझ कर अकिं´चन भाव से रहता है-

शरीर की तो बात ही अलग, मन से भी किसी वस्तु का संग्रह नहीं करता- उसे अनन्त सुख-स्वरुप परमात्मा की प्राप्ति होती है। मुझे मान या अपमान का कोई ध्यान नहीं है और घर एवं परिवार वालों को जो चिन्ता होती है वह

मुझे नहीं है। मैं अपने आत्मा में ही रमता हूँ तथा अपने साथ ही क्रीड़ा करता हूँ। यह शिक्षा मैंने बालक से ली है। इस जगत में दो ही प्रकार के व्यक्ति निश्चिन्त और परमानन्द में मग्न रहते हैं- एक तो भोला-भाला निश्चेष्ट नन्हा सा बालक तथा दूसरा वह पुरुष जो गुणातीत हो गया हो। अपरिग्रह, दया, परोपकार, क्षमा, दम, तितिक्षा, पक्षपात, शून्यता, उत्साहवर्धन, योग्यता तथा उत्तम आचरण होना चाहिए। आचरणात् अचिनोतिऽति इति आचार्यः।

श्रीमद्भागवत महापुराण के अनुसार शिष्य दो प्रकार के होते हैं, उत्तम एवं अधम। उत्तम शिष्य गुरु के उपदेशों व आचरण का पूर्णतयः पालन करता है। शिष्य को विनयी, आज्ञापालक, संयमी, सत्यवादी, सदाचारी, अहिंसक, क्रोध रहित, लोभ व मोह रहित, परोपकारी तथा सन्तोषी होना चाहिए।

श्रीमद्भागवत महापुराण के अनुसार आख्यानों और चरित्रों से शिक्षण की महत्त्वपूर्ण विधियों का ज्ञान होता है। उपदेश, संवाद, प्रश्नोत्तर, उपाख्यान, व्याख्या, व्याख्यान, विश्लेषण, दृष्टान्त, तर्क, संश्लेषण एवं अनुमानादि विधियाँ शिक्षा में प्रयोग की जानी चाहिए। यम-नियम निदिध्यासन, ध्यान, धारणा एवं अनुभवादि विधियों का श्रीमद्भागवत महापुराण में वर्णन प्राप्त होता है।

श्रीकृष्ण-बलराम का यज्ञोपवीत और गुरुकुल प्रवेश

पितरावुपलब्धार्थौ विदित्वा पुरुषोत्तमः।
मा भूदिति निजां मायां ततान जनमोहिनीम्।।
उवाच पितरावेत्य साग्रजः सात्वतर्षभः।
प्रश्रयावनतः प्रीणन्नम्ब तातेति सादरम्।।

श्रीशुकदेव जी कहते हैं- हे परीक्षित ! भगवान् श्रीकृष्ण ने देखा कि माता-पिता को मेरे ऐश्वर्य का, मेरे भगवत भाव का ज्ञान हो गया है, परन्तु इन्हें ऐसा ज्ञान होना ठीक नहीं है, (इससे तो ये पुत्र स्नेह का सुख नहीं पा सकेंगे) ऐसा सोचकर उन्होंने उन पर अपनी वह योगमाया फैला दी, जो उनके स्वजनों को मुग्ध रखकर उनकी लीला में सहायक होती है। यदुवंशी शिरोमणि भगवान् श्रीकृष्ण बड़े भाई बलराम जी के साथ अपने माता-पिता के पास जाकर आदरपूर्वक और विनय से झुककर मेरी माँ, मेरे पिता जी इन शब्दों से प्रसन्न करते हुए कहने लगे- पिता जी माता जी हम आपके पुत्र हैं और आप हमारे लिए सर्वदा उत्कण्ठित रहे हैं। पिता और माता ही इस शरीर को जन्म देते हैं तथा इसका लालनपालन करते हैं। तब कहीं जाकर यह शरीर धर्म, अर्थ, काम अथवा मोक्ष की प्राप्ति का साधन बनता है यदि कोई मनुष्य सौ वर्ष तक जी कर भी माता-पिता की सेवा करता है, तब भी वह उनके उपकार से उऋण नहीं हो पाता है जो पुरुष समर्थ होकर भी बूढ़े माता-पिता की, सती पत्नी, बालक सन्तान, गुरु ब्राह्मण तथा शरणागत का भरणपोषण नहीं करता वह जीता हुआ भी मृत्यु के समान ही है।

सन्दर्भ :

1. श्रीमद्भागवत महापुराण दशम स्कन्ध का पूर्वार्ध, 44.20
2. श्रीमद्भागवत महापुराण दशम स्कन्ध का पूर्वार्ध, 1.37
3. श्रीमद्भागवत महापुराण, एकादश स्कन्ध, 7.1
4. श्रीमद्भागवत महापुराण, एकादश स्कन्ध, 7.2
5. श्रीमद्भागवत महापुराण, एकादश स्कन्ध, 8.3
6. श्रीमद्भागवत महापुराण, एकादश स्कन्ध, 8.4
7. श्रीमद्भागवत महापुराण, एकादश स्कन्ध, 9.1
8. श्रीमद्भागवत महापुराण, एकादश स्कन्ध, 9.2
9. श्रीमद्भागवत महापुराण, दशम स्कन्ध का पूर्वार्ध 45.1
10. श्रीमद्भागवत महापुराण, दशम स्कन्ध का पूर्वार्ध 45.2

•